॥ श्रीहरिः ॥ 318▲

ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

ईश्वर दयालु और न्यायकारी है

सच्चिदानन्दघन अखिल विश्वेश्वर परम दयालु परमेश्वरकी सत्ताको स्वीकार करनेवाले प्रायः सभी मतोंके लोग इस बातको स्वीकार करते हैं कि ईश्वर दयालु और न्यायकारी है। ईश्वरमें केवल दयालुता या केवल न्यायकारिताका एकांगी भाव नहीं है, उसमें ये दोनों ही गुण एक ही समय, एक ही साथ पूर्णरूपसे रहते हैं और वे जीवोंके प्रति व्यवहार करनेमें दोनों ही भावोंसे एक ही साथ काम लेते हैं। इसपर कुछ लोग ऐसी शंका किया करते हैं कि 'न्याय और दया दोनों गुण एक साथ कैसे रह सकते हैं? अदालतमें न्यायासनपर बैठा हुआ जज यदि दयाके वश होकर दण्डके योग्य वास्तविक अपराधी व्यक्तिको बिलकुल दण्ड न दे या

उचितसे कम दे तो क्या उसके न्यायमें कोई बाधा नहीं आती? अथवा यदि वह अपराधीको पूरा दण्ड दे दे तो उसकी दया वहाँ क्या बिलकुल बेकार नहीं रह जाती है? इसी प्रकार ईश्वरके लिये भी क्यों नहीं समझना चाहिये?'

इस शंकाका उत्तर देना सहज काम नहीं है। परमात्माके गुणोंका विवेचन करना और उनपर टीका-टिप्पणी करना मुझ-जैसे मनुष्यके लिये तो निरा लड़कपन ही है, परन्तु अपने चित्त-विनोदार्थ परमात्माके गुणगानकी भावनासे यत्किंचित् प्रयत्न किया जाता है। वास्तवमें मनुष्यकृत कानूनके साथ ईश्वरके कानूनकी समता कदापि नहीं की जा सकती। मनुष्य यदि स्वार्थसे कानून नहीं बनाता तो उसपर वातावरण और परिस्थितिका प्रभाव तो जरूर ही पड़ता है। भविष्यके विवेचनमें भी वह सर्वथा निर्भूल नहीं समझा जा सकता, आसक्ति या अन्य किसी कारणवश उसमें अन्यान्य

प्रकारसे भी भूलके लिये गुंजाइश रह सकती है, परन्तु ईश्वरमें भूलके लिये तनिक भी गुंजाइश नहीं है। इसके सिवा ईश्वर दया, न्याय और उदारताकी अनन्त निधि होनेके कारण उसके कानूनमें भी दया, न्याय और उदारताकी बाहुल्यता रहती है। सच्ची बात तो यह है कि जगत्‌को सत्य समझनेवाला मनुष्य स्वार्थहीन न होनेके कारण न्याय, दया और उदारतासे भरे कानून बना ही नहीं सकता। सब प्रकारसे स्वार्थरहित, सबके सुहृद्, दयाके समुद्र महापुरुष, जिनके सुहृदता, दया, प्रेम, वात्सल्यता आदि गुणोंका थाह ही नहीं मिलता, भले ही वैसे नियम बना सकें, साधारण मनुष्योंका तो यह काम नहीं है। अतएव यद्यपि मानवी कानूनके साथ ईश्वरीय कानूनकी तुलना तो हो ही नहीं सकती, तथापि विचार करनेपर मनुष्यमें भी दया और न्याय दोनोंका एक साथ रहना सिद्ध हो

सकता है। इसके लिये कुछ कल्पित उदाहरण दिये जाते हैं।

रामलाल नामक एक व्यापारीके दो हजार रुपये नारायणप्रसाद नामक कायस्थमें लेने थे। नारायणप्रसाद सच्चा और ईमानदार आदमी था, परन्तु कई तरहकी आपत्तियाँ आ जानेके कारण उसका सारा रोजगार नष्ट हो गया, घरकी सारी सम्पत्ति, यहाँतक कि पत्नीके सुहागके गहने भी बिक गये और वह चालीस रुपये मासिकपर एक जगह नौकरी करने लगा। इतनी कम आमदनीमें बहुत ही मुश्किलसे उसके बड़े कुटुम्बके पेटमें अनाज पहुँचता था, परन्तु चारों ओर फैली हुई बेकारीमें अधिककी कहीं गुंजाइश ही नहीं थी। रामलालने रुपयोंके लिये तकाजा शुरू किया, परन्तु नारायणप्रसाद किसी तरह रुपये नहीं दे सका। रामलालने अदालतमें नालिश कर दी। जिस जजके सामने मुकद्दमा था, वह बड़ा ही नेक,

कानूनका जानकार, न्यायकारी और दयालु था। नारायणप्रसादने जजकी सेवामें उपस्थित होकर कहा कि 'हुजूर! मुझे सेठ रामलालके दो हजार रुपये जरूर देने हैं और मैं मरतेदमतक उन्हें दूँगा, परन्तु इस समय मेरी बड़ी ही तंग हालत है, मेरे घरमें एक पैसा भी नहीं है, न कोई मिल्कियत ही है, आप भलीभाँति जाँच कर लें। मैं चालीस रुपये महीनेपर एक जगह नौकर हूँ, घरमें लड़के-बच्चे मिलाकर सब आठ प्राणी हैं, उनकी गुजर बड़ी कठिनतासे होती है, तथापि मैं किसी तरह कष्ट सहकर भी दो सौ रुपये सालाना किस्तके हिसाबसे रामलालजीको दूँगा। इतनेपर भी रामलालजी मुझे बाध्य करेंगे और आप जेल भेजेंगे तो मैं जेल चला जाऊँगा, पर इन्सॉल्वेण्ट (दिवालिया) नहीं होऊँगा, पर इस हालतमें मेरे बाल-बच्चोंपर

आफतका पहाड़ टूट पड़ेगा। हुजूरको जैसा अच्छा लगे वैसा ही करें।'

नारायणप्रसादकी सच्ची बातें सुनकर जज प्रसन्न हो गया, उसने कहा कि 'भाई, तुम अपने महाजनको समझा-बुझाकर ठीक कर लो, तुम्हारी ऐसी हालतपर उसे जरूर तुम्हारी शर्त मान लेनी चाहिये।' नारायणप्रसादने रामलालको बहुत समझाया, बहुत विनय-प्रार्थना की, परन्तु रामलालने कहा कि 'मैं किसी तरह नहीं मानूँगा।' अदालतमें मामला पेश हुआ। रामलालके दो हजार रुपये नारायणप्रसादको देने हैं, यह साबित हो गया। जजने जाँच करके इस बातका पता लगा लिया कि नारायणप्रसादने अपनी जो हालत बतलायी थी सो अक्षरशः सत्य है, स्वयं रामलालने भी इस बातको मंजूर किया। इसपर रामलालके मने करनेपर भी जजने नारायणप्रसादके कथनानुसार २००) सालानाकी

किस्त करके उसपर दो हजारकी डिग्री दे दी। जजकी दयालुता देखकर नारायणप्रसाद विह्वल हो गया। क्या इस फैसलेमें जज अन्यायी समझा जायगा? क्या उसका यह काम रिश्वतखोरीका माना जायगा, अथवा क्या इसमें दयालुता नहीं मानी जायगी? इसमें दया और न्याय दोनों ही हैं। जब यहाँकी कानूनमें ऐसा होता है, तब श्रीभगवान् अपने भक्तको उसके इच्छानुसार फैसला दे दें तो क्या इसमें उनकी दयालुता या न्यायमें कोई दोष आता है?

अब फौजदारीके दो उदाहरण देखिये—

गोविन्दराम और रामप्रसाद एक ही मुहल्लेमें रहते थे, वे आपसमें सदा ही तर्क-वितर्क किया करते। तर्कमें लड़ाईका डर रहता ही है। एक दिन परस्पर शास्त्रार्थमें रामप्रसादको अपने विपरीत सिद्धान्त सुनकर गुस्सा आ गया। क्रोधमें मनुष्यकी बुद्धि मारी जाती है। अतः

उसने दो-चार हाथ जोरसे गोविन्दरामपर जमा दिये। गोविन्दरामने उसपर फौजदारी दावा कर दिया। रामप्रसादको इस बातका पता लगते ही उसने मैजिस्ट्रेटकी सेवामें जाकर सारी बातें सच-सच कह दीं। उसने कहा कि 'हमलोग धर्मके सम्बन्धमें आपसमें विवाद कर रहे थे, गोविन्दरामने मुझे न्याययुक्त ही फटकारा था। परन्तु अपने मनके बहुत विपरीत होनेसे मुझे गुस्सा आ ही गया, जिससे मेरेद्वारा यह अपराध बन गया। जो कुछ दोष है सो वास्तवमें मेरा ही है, मुझे अपनी करनीपर बड़ा ही पश्चात्ताप है, अब आप जो कुछ आज्ञा करें वही करनेको मैं तैयार हूँ।' मैजिस्ट्रेटने कहा कि 'भाई, मैं इसमें कुछ भी नहीं कर सकता, तुम गोविन्दरामके पास जाकर उससे क्षमा-प्रार्थना करो, वह चाहे तो तुम्हें क्षमा कर सकता है, तुम्हारे लिये यही सबसे सरल उपाय है।' मैजिस्ट्रेटकी बात सुनकर रामप्रसाद गोविन्दरामके घर गया और उसके

चरणोंमें पड़कर अपना दोष स्वीकार करते हुए क्षमा-प्रार्थना की और कहा कि 'अब मैं आपकी चरण-शरण आ पड़ा हूँ, मैं जरूर अपराधी हूँ, पर मुझे छोड़ना पड़ेगा।' उसकी अनुनय-विनय सुनकर और उसके हृदयमें सच्चा पश्चात्ताप देखकर गोविन्दराम राजी हो गया और उसने मुकद्दमा उठानेकी दरखास्त दे दी। मैजिस्ट्रेटने दरखास्त मंजूर करके रामप्रसादको बेदाग छोड़ दिया। क्या इसमें कोई भी मनुष्य यह कह सकता है कि गोविन्दराम या मैजिस्ट्रेटने कोई अन्याय किया, या उन्होंने दया नहीं की? एक समय भक्त अम्बरीषका अपराध करनेपर दुर्वासा मुनिको भगवान् श्रीविष्णुने भी उसीकी शरणमें भेजा था, वहाँ जानेपर अम्बरीषने चक्रसे विनय करके उनके प्राण बचा दिये थे। दया और न्याय दोनों ही क्रियाएँ साथ-साथ सम्पन्न हुईं।

शिवराम नामक एक भले स्वभावका सदाचारी मनुष्य एक गाँवमें रहता था, उसी गाँवमें एक डाकूका घर था। शिवराम कभी-कभी उससे डकैतीकी घटनाएँ सुनता था। कुसंगका फल बहुत बुरा होता है। शिवरामका मन एक दिन ललचाया, लोभने उसकी बुद्धि बिगाड़ दी, परिणाम-ज्ञानशून्य होकर वह नन्दराम नामक गृहस्थके घर डाका डालकर तीन हजार रुपये नकद और कुछ गहने लूट लाया। आत्मरक्षाके लिये रोकनेवालोंपर दो-चार लाठियाँ भी जमा दीं।

धन लेकर घर पहुँचा और अपनी स्त्रीसे सारा हाल कहा। शिवरामकी पत्नी बड़ी साध्वी थी, उसे स्वामीके इस कुकृत्यको सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उसने चरणोंमें सिर टेककर स्वामीको धर्म सुझाया और प्रार्थना की कि यह धन अभी आप लौटा दीजिये। शिवराम वास्तवमें अच्छा आदमी था, वह

डकैती-पेशावाला तो था ही नहीं, कुसंगसे उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। स्त्रीके समझानेपर उसे अपना अपराध दीपककी ज्योतिकी भाँति स्पष्ट दीखने लगा। पत्नीकी सलाहसे वह तुरन्त धन लेकर कलक्टर साहेबके बंगलेपर गया और रुपये तथा गहने उनके पास रखकर आत्मसमर्पण करते हुए उसने गिड़गिड़ाकर कहा कि 'मुझसे बड़ा भारी अपराध हो गया, कुसंगसे मेरे मनमें लोभ पैदा हो गया था, जिससे मेरी मति मारी गयी, मैंने बेचारे नन्दरामको अन्यायरूपसे सताया और वह कुकर्म किया जो मेरे बाप-दादोंमें किसीने भी नहीं किया था। मेरा अपराध किसी प्रकार क्षम्य तो नहीं है परन्तु मैं आपके शरण हूँ, आप मुझे बचाइये, भविष्यमें मैं कभी ऐसा कुकर्म नहीं करूँगा।' कलक्टरको उसकी बातपर विश्वास हो गया, उसने सोचा कि यदि इसकी नीयत खराब

होती तो माल लेकर हाजिर क्यों होता? कलक्टरने उसे वहीं रोककर पुलिसके द्वारा नन्दरामको बुलवाया। नन्दराम पुलिसमें इत्तला करने जा ही रहा था कि उसको एक कानिस्टेबलने आकर कहा—'तुम्हारे घर जिसने डकैती की है, वह मालसमेत कलक्टर साहेबके बंगलेपर हाजिर है, साहेबने तुम्हें अभी बुलाया है।' माल मिलनेकी बात सुनते ही नन्दरामको बड़ी खुशी हुई और वह तुरन्त ही सिपाहीके साथ साहेबके बंगलेपर जा पहुँचा। उसे देखकर शिवरामने उसके चरण पकड़ लिये और अपना अपराध क्षमा करनेके लिये रो-रोकर प्रार्थना करने लगा। नन्दरामने उसकी एक भी नहीं सुनी और कहा कि 'तुझे जेल भिजवाये बिना मैं कभी नहीं छोड़ूँगा।' मामला कोर्टमें गया, कलक्टर साहेबके पूछनेपर शिवरामने वही बातें साफ-साफ फिर कह दीं जो उसने बंगलेपर कही थीं, इसपर साहेबने

नन्दरामसे पूछा कि, 'बताओ, इसकी चाल-चलनके सम्बन्धमें तुम्हारा क्या खयाल है?' नन्दरामको स्वीकार करना पड़ा कि, 'मैं इसे जानता हूँ, यह अच्छे घरानेका लड़का है, डाकुओंकी संगतिसे ही इसको दुर्बुद्धि पैदा हुई होगी; परन्तु इसे सजा जरूर मिलनी चाहिये, नहीं तो यह फिर ऐसे ही काम करेगा।' कलक्टर दयालु था, वह शिवरामकी सरलता और सत्यतापर मुग्ध हो गया और उसने भविष्यके लिये सावधान करके शिवरामको छोड़ दिया। इस प्रकार दया करनेवाला कलक्टर क्या अन्यायी समझा जायगा? इसी प्रकार सच्चे और सरल हृदयसे भगवान्‌के शरण होनेपर वे भी मुक्त कर देते हैं।

यहाँपर यह प्रश्न उठ सकता है, ये सब उदाहरण तो साधारण अपराधोंके हैं, खून आदिके मामलेमें विपक्षके लोग राजी हो जायँ तो भी न्यायकारी जज अपराधीको नहीं

छोड़ सकता, यदि छोड़ देता है तो वह अवश्य ही अन्यायी समझा जाता है। इसका उत्तर देनेसे पूर्व यह समझना चाहिये, खून या मनुष्य-वध तीन प्रकारसे किया जाता है। न्यायके लिये, भूलसे, या जान-बूझकर अन्यायसे। न्यायके लिये किया जानेवाला मनुष्य-वध तो खूनके अपराधमें गिना ही नहीं जाता। निःस्वार्थभावसे धर्मकी रक्षाके लिये, लोकहितके लिये, न्यायरक्षाके लिये या आत्मरक्षाके लिये जो नर-वध होते हैं, उनमें तो मारनेवाला दण्डनीय ही नहीं होता। अपराधीको न्याययुक्त फाँसीकी सजा देनेवाले जज या फाँसीकी सजा पाये हुए मनुष्यको फाँसीपर लटकानेवाले जल्लादको कोई अपराधी नहीं मानता। यथार्थमें डाकुओंसे धन-प्राणको बचानेके लिये उनपर शस्त्र-प्रहार करनेवाला भी पुरस्कारका पात्र समझा जाता है। हालमें एक बंगाली युवतीने बुरी नीयतसे घरमें घुस आनेवाले एक नौजवानको

मार डाला था। वह पकड़ी गयी, परन्तु कोर्टने उसके कार्यकी प्रशंसा करते हुए उसे छोड़ दिया। अवश्य ही मनुष्यके न्यायमें इस गलतीके लिये गुंजाइश रह सकती है कि वह किसी स्थलमें न्यायानुकूल कर्म करनेवालेको भी दण्डनीय समझ लेता है, परन्तु अन्तर्यामी सर्वतश्चक्षु परमात्माके यहाँ तो ऐसी भूलकी कोई सम्भावना ही नहीं।

दूसरे प्रकारका खून भूलसे होता है। ऐसे खूनका अपराधी कसूरवार तो समझा जाता है, क्योंकि उसकी असावधानीसे ही नर-हत्या होती है, परन्तु उसका कसूर पहलेकी अपेक्षा बहुत हलका समझा जाता है। ऐसा अपराधी चेष्टा करनेपर छूट भी जाता है या कोशिशकी कमीसे उसे कुछ सजा भी हो सकती है।

तीसरे प्रकारका खून क्रोध, लोभ, वैर आदिके कारण जान-बूझकर किया जाता है, ऐसा अपराधी कसूर साबित होनेपर यहाँके कानूनके

अनुसार प्रायः न्यायालयसे नहीं छूट सकता।

इनमें पहलेके उदाहरण तो दिये जा चुके हैं, ऐसे और भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। श्रीखड्गबहादुर नामक नैपाली युवकने अत्याचारी हीरालाल अग्रवालको मार डाला था, उसे हलका दण्ड भी हो गया था, परन्तु लोगोंके कहनेपर वाइसरायने उसे छोड़ दिया।

दूसरेके लिये निम्नलिखित उदाहरण दिया जाता है—राजपूतानेके एक गाँवमें रामसिंह नामक एक राजपूत नवयुवक जंगलमें पहाड़ीके नीचे निशाना मारना सीख रहा था, पास ही उसका मित्र सजनसिंह खड़ा था। निशानेपर मारनेके लिये वह बन्दूकका घोड़ा दबा ही रहा था कि सामनेसे एक आदमी जाता दिखलायी पड़ा, उसको बचानेके लिये उसने हाथ घुमाया, घोड़ा दब गया और गोली छूटकर पास खड़े हुए सजनसिंहके हृदयको चीरकर पार हो गयी, वह धड़ामसे गिर पड़ा।

रामसिंहके होश हवा हो गये। पुलिस आयी। रामसिंह खूनके अपराधमें पकड़ा गया, एक तो उसे अपने हाथसे मित्रके मरनेका दुःख था और दूसरा यह राजसंकट! बेचारेकी बड़ी ही दुर्दशा थी। कोर्टमें मामला पेश हुआ। रामसिंहने सारी घटना सच-सच सुनाकर दुःख प्रकट करते हुए क्षमा माँगी। हाकिमने सजनसिंहके घरवालोंसे पूछा कि 'आपलोग सच कहें कि आपकी समझसे रामसिंहकी नीयतमें कोई दोष था या नहीं? यह जिस गलतीको बता रहा है उसके सम्बन्धमें आप-लोगोंकी क्या धारणा है?' उन लोगोंने कहा कि 'हमलोग भी इस बातपर तो विश्वास करते हैं कि इसकी नीयत सजनसिंहको मारनेकी नहीं थी, वह इसका मित्र भी था, हमलोग भी उस समय वहीं उपस्थित थे, परन्तु इसकी असावधानीसे वह मारा गया, अतएव इसे दण्ड अवश्य मिलना चाहिये।' हाकिमने

उसकी नीयत और सत्यतापर विश्वासकर आगेके लिये सतर्क करते हुए उसे बेदाग छोड़ दिया। क्या इस प्रकार दया करनेवाले हाकिमको कोई अन्यायी कह सकता है? जब मनुष्य भी इस तरह दया और न्यायका बर्ताव एक साथ कर सकता है तब शरण जानेपर न्यायकी रक्षा करते हुए ही परमात्मा उसके अपराधोंको क्षमा कर दें, इसमें क्या आश्चर्य है?

इस उदाहरणपर एक प्राचीन गाथाका स्मरण हो आता है जिसमें भूलसे अपराध करनेवाले परम धार्मिक पुरुषको भी दण्ड भोगना पड़ा था।

इतिहास महाराज दशरथका है, जिनके हाथसे मातृ-पितृभक्त श्रवणकुमार मारा गया था। इस इतिहासको लेकर लोग यह प्रश्न किया करते हैं कि 'जब महाराज दशरथका भूलसे किया हुआ अपराध क्षमा नहीं हुआ तब यह कैसे माना जा सकता है कि भूलसे किये हुए अपराधीका अपराध

क्षमा हो जाता है?' इस शंकाका उत्तर इतिहास-सहित इस प्रकार है—

महाराज दशरथ एक समय रातको वनमें हिंसक पशुओंके शिकारके लिये गये थे। एक जगह उन्होंने नदीमें हाथीकी गर्जनाका-सा शब्द सुनकर तीक्ष्ण शब्दवेधी बाण मारा, उसी क्षण किसीके कराहनेकी स्पष्ट आवाज आयी और यह शब्द सुने कि 'अरे, मुझ निर्दोष तपस्वीको बिना अपराध किसने मारा? मैंने किसीकी क्या बुराई की थी जो इस प्रकार मुझे मार डाला, अब मेरे बूढ़े मा-बापकी कौन सेवा करेगा? उन्हें कौन खिलावे-पिलावेगा?' इन दयनीय शब्दोंको सुनकर दशरथके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई, उन्होंने घबराये हुए दौड़कर नदी-तीरपर आकर देखा तो एक जटाधारी तपस्वी ऋषि खूनसे लथपथ पड़े हैं। दशरथके क्षमा-प्रार्थना करनेपर ऋषिने कहा कि 'मेरे अन्धे मा-बाप प्यासे थे, मैं

उनके लिये जल भरने आया था, घड़ा भरनेमें शब्द हुआ इसीपर तुमने बाण मार दिया। मेरे माता-पिता मेरी बाट देखते होंगे, जाकर उन्हें यह वृत्तान्त कहो, उनको प्रसन्न करो, जिससे वह तुम्हें शाप न दे दें। मेरे शरीरसे बाण निकाल दो, मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है। तुम्हें ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगेगा, क्योंकि मैं श्रवणकुमार नामक वैश्य हूँ।' इसपर दशरथजीने उनका बाण निकाला और उसके निकलते ही श्रवणके प्राण भी निकल गये। राजा जल लेकर श्रवणके माता-पिताके पास गये। वे पुत्रकी प्रतीक्षा कर रहे थे, पैरोंकी आहट सुनकर उन्होंने देरसे आनेका कारण पूछा। दशरथने अपना नाम-पता बताकर बड़ी ही विनयके साथ सारा हाल उन्हें सुनाया और जल पीनेके लिये प्रार्थना की। बूढ़े दम्पति एक बार मूर्छित हो गये, फिर होशमें आकर कहने लगे—'राजन्! अपना यह अशुभ कर्म

तुम स्वयं आकर हमसे न कहते तो तुम्हारे सिरके हजारों टुकड़े हो गये होते। तुमने भूलसे यह कार्य किया है, कहीं जान-बूझकर करते तो समस्त रघुकुल ही नष्ट हो जाता। अब हम दोनोंको भी वहीं ले चलो।' दशरथ दोनोंको वहाँ ले गये। वे दोनों पुत्रके शरीरको स्पर्श करके वहीं गिर पड़े और भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगे। दुःखी ऋषिने मरते समय कहा—'दशरथ! जैसे मैं आज पुत्र-वियोगके दुःखसे मर रहा हूँ, वैसे ही तुम्हारी मृत्यु भी पुत्र-वियोगके शोकसे ही होगी।' इतना कहकर वे दोनों भी परलोक सिधार गये।

तदनन्तर राजाने यज्ञ किया जिसके फलस्वरूप राजाके श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—ये चार पुत्र हुए। श्रीरामको वनवास हुआ और इसी पुत्र-वियोगके कारण ही राजाकी मृत्यु हुई। यह इतिहास (वाल्मीकि रामा० २। ६३ में) है। इससे राजाको दण्ड

अवश्य मिला परन्तु यह दण्ड वास्तवमें बहुत ही अल्प था। पुत्र वनवासी हुए न कि श्रवणकी भाँति उनका चिर-वियोग हो गया था। हमारी समझसे यदि राजा दशरथ विशेष चेष्टा करते तो सम्भवतः यह दण्ड भी क्षमा हो सकता था। राजाकी व्याकुल दशाको देखकर श्रवणने तो अपनी ओरसे उन्हें क्षमा कर ही दिया था और माता-पिताको समझानेके लिये भेजा था। इसी प्रकार श्रवणके माता-पिताकी विशेष दया हो जाती तो वहाँसे भी दशरथजी बेदाग छूट सकते थे। उन्होंने जितनी कोशिश की, उतना ही कार्य भी हुआ। कोशिश करना भी प्रायश्चित्त ही है। सम्भव है महाराज दशरथ उस समय परमेश्वरसे विशेष प्रार्थना करते और ईश्वर चाहते तो श्रवणकुमारके पिताकी बुद्धिमें पवित्रता और दयाका संचार करके उनके द्वारा दशरथको क्षमा करवा देते। यदि ऐसा होता तो ईश्वरके

न्यायमें कोई भी दोष नहीं समझा जाता।

बात तो यह है कि मनुष्यके द्वारा कैसा भी अपराध क्यों न बन जाय, ईश्वरकी शरण होकर उसके अनुकूल प्रायश्चित्तादि उपाय करनेसे, बिना ही भोग किये उसके पाप क्षमा हो सकते हैं। प्रायश्चित्त आदि उपायोंसे भी फलभोगके समान ही पापोंका नाश हो जाता है, क्योंकि प्रायश्चित्त भी एक प्रकारसे भोग ही है।

अवश्य ही वर्तमानकालके कानूनमें तीसरे प्रकारके जान-बूझकर बुरी नीयतसे किये हुए खूनके लिये दयाका ऐसा कोई प्रयोग नहीं मिल सकता, जिसका उदाहरण देकर ईश्वरकी दया समझायी जा सके, परन्तु इतना तो सभीको मानना होगा कि सच्चे न्यायकारी प्रजाहितैषी राजाका उद्देश्य भी तो दण्डके कानून बनाने और तदनुसार दण्ड देनेमें अपराधीपर दया करना ही होता है। न्यायी राजा अपराधीको दण्ड देकर उसे शिक्षा देना और उसका सुधार करना चाहता

है, द्वेषसे उसे दुःख पहुँचाना और अकारण ही उसकी हत्या करना नहीं चाहता। हत्याका उद्देश्य तो द्वेषपूर्ण और प्रतिहिंसावृत्तिवाले मनुष्यका ही हो सकता है। इतना होनेपर भी न्यायपरायण राजाकी तुलना ईश्वरके साथ कदापि नहीं की जा सकती। ईश्वरका कानून दया, सुहृदता और जीवोंके हितसे पूर्ण होता है। हमलोग तो उसकी कल्पनातक भी नहीं कर सकते।

ईश्वरका दण्ड भी वरके सदृश होता है। ईश्वरके न्यायसे फरियादी और असामी दोनोंका ही परिणाममें हित और उद्धार होता है, यही उसकी विशेषता है। परम दयालु परमात्माके कानूनके अनुसार जो अपराधी अपनी भूलको सच्चे दिलसे स्वीकार करता हुआ भविष्यमें फिर अपराध न करनेकी प्रतिज्ञा करता है और सच्चे हृदयसे ईश्वरके शरण होकर सर्वस्वसहित अपनेको उसके चरणोंमें अर्पण कर देता है एवं ईश्वरकी कड़ी-से-कड़ी आज्ञाको—उसके भयानक-से-

भयानक विधानको, उसके प्रत्येक न्यायको सानन्द स्वीकार करता तथा उसे पुरस्कार समझता है, साथ ही अपने किये हुए अपराधोंके लिये क्षमा नहीं चाहकर दण्ड ग्रहण करनेमें खुश होता है। ऐसे सरलभावसे सर्वस्व अर्पण करनेवाले शरणागत भक्तको भगवान् अपराधोंसे मुक्त करके उसे अभय कर देते हैं। इसमें दयालु ईश्वरका न्याय ही सिद्ध होता है। ऐसे भाववाले भक्तको दण्डसे मुक्त करना ही परमात्माके राज्यका दया और न्यायपूर्ण नियम है। इसीसे भगवान्में दया और न्याय दोनों एक ही साथ रहते हैं।

श्रीगीताजीमें भगवान् स्पष्ट कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(९। ३०-३१; १८। ६६)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य-भावसे मेरा भक्त हुआ मुझको निरन्तर भजता है वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है, उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।' 'अतएव वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है, हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त (कदापि) नष्ट नहीं होता।' 'इसलिये सब कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माके ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, मैं तुझे समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक न कर!'

॥ श्रीहरि: ॥

अवतारका सिद्धान्त

अवतारका अर्थ है अव्यक्तरूपसे व्यक्तरूपमें प्रादुर्भाव होना। यह बहुत ही अलौकिक एवं रहस्यकी बात है। इसलिये जो पुरुष भगवान्‌के इस अवतरित होनेके दिव्य रहस्यको जानते हैं वे भगवान्‌को प्राप्त हो जाते हैं (गीता ४। ९)।

परम दयालु पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सबपर अहैतुकी दया करके संसारके परम हितके लिये ही यहाँ अवतार लेते हैं, यानी जन्म धारण करते हैं। भगवान् इतने महान् हैं कि उनकी महिमा वर्णन करनेमें ब्रह्मादि देवता भी अपनेको असमर्थ समझते हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीब्रह्माजीने स्वयं कहा है—

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च॥
को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्॥

(१०। १४। २०-२१)

'हे जगन्नियन्ता प्रभो! हे विधातः! देवता, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक् और वैसे ही जलचरादि योनियोंमें आप अजन्माके जो अवतार होते हैं, वे असत्पुरुषोंके मदका मथन और सत्पुरुषोंपर कृपा करनेके लिये ही होते हैं।

'हे भगवन्! आप सर्वव्यापक परमात्मा और योगेश्वर हैं; जिस समय आप अपनी योगमायाका विस्तार कर क्रीडा करते हैं उस

समय त्रिलोकीमें ऐसा कौन है जो यह जान सके कि आपकी लीला कहाँ, किस प्रकार, कितनी और कब होती है?'

वे ही भगवान् हमलोगोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिये हमारे-जैसे बनकर हमारे इस भूमण्डलमें उतर आते हैं, इससे बढ़कर जीवोंपर भगवान्‌की और क्या कृपा होगी? वे तो कृपाके आकर हैं। कृपा करना उनका स्वभाव ही है। कृपा किये बिना उनसे रहा नहीं जाता। इसीलिये जब-जब भक्तोंपर विपत्ति आती है, पृथ्वी पापोंके भारसे दब जाती है। साधु पुरुष बुरी तरह सताये जाने लगते हैं और अत्याचारियोंके अत्याचार असह्य हो जाते हैं, तब-तब पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये, भक्तोंको उबारनेके लिये, साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंके अत्याचारोंका दमन करके संसारमें पुनः धर्मकी स्थापना करनेके लिये वे समय-समयपर इस पृथ्वी-

मण्डलपर अवतीर्ण हुआ करते हैं। भगवान् स्वयं गीताजीमें कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(४।६—८)

'मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये,

पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।'

यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'भगवान् तो सर्वशक्तिमान् हैं, वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, वे बिना अवतार लिये ही अपनी शक्तिसे—अपने संकल्पसे ही सब कुछ कर सकते हैं; फिर अवतार लेनेकी उन्हें क्या आवश्यकता है?' बात बिलकुल ठीक है, भगवान् बिना अवतार लिये ही सब कुछ कर सकते थे और कर सकते हैं तथा करते भी हैं; परन्तु लोगोंपर विशेष दया करके अपने दर्शन, स्पर्श और भाषणादिके द्वारा सुगमतासे उन्हें उद्धारका सुअवसर देनेके लिये एवं अपने प्रेमी भक्तोंको अपनी दिव्य लीलाओंका आस्वादन करानेके लिये इस पृथ्वीपर साकाररूपसे प्रकट होते हैं। उन अवतारोंमें धारण किये हुए

रूपका तथा उनके गुण, प्रभाव, नाम, माहात्म्य और दिव्य-कर्मोंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करके सब लोग सहज ही संसार-समुद्रसे पार हो जाते हैं। यह काम बिना अवतारके नहीं हो सकता, इसीलिये भगवान् अवतार लेते हैं।

दूसरा प्रश्न यह होता है कि 'जो भगवान् निराकाररूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं; वे अल्पकी भाँति किसी एक देशमें कैसे प्रकट हो सकते हैं और यदि होते हैं तो उतने कालके लिये अन्यत्र उनका अभाव हो जाता होगा अथवा उनकी शक्ति बहुत सीमित हो जाती होगी?' इस बातको समझनेके लिये हमें व्यापक अग्नि और प्रकट अग्निका दृष्टान्त लेना चाहिये। अग्नि निराकाररूपसे सर्वत्र व्याप्त है, इसीलिये उसे चकमक पत्थर तथा दियासलाई आदिसे चाहे जहाँ प्रकट किया जा सकता है।

और जिस कालमें उसे एक जगह प्रकट किया जाता है उस कालमें अन्यत्र उसका अभाव नहीं हो जाता, बल्कि एक ही कालमें वह कई जगह प्रकट होती देखी जाती है और जहाँ भी प्रकट होती है, उसमें पूरी शक्ति रहती है। इसी प्रकार भगवान् भी निराकाररूपसे सर्वत्र व्याप्त होते हुए ही किसी देशविशेषमें अपनी पूरी भगवत्ताके साथ प्रकट हो जाते हैं और उस समय उनका अन्यत्र अभाव नहीं हो जाता, बल्कि एक ही समयमें उनके कई स्थलोंपर प्रकट होनेकी बात भी शास्त्रोंमें कई जगह आती है। श्रीमद्भागवतमें वर्णन आता है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकासे मिथिलापुरी गये। वहाँके राजा बहुलाश्व भगवान्‌के अनन्य भक्त थे। वहींपर श्रुतदेव नामके एक ब्राह्मण भक्त भी रहते थे। दोनोंने एक ही साथ भगवान्‌से अपने-अपने घर

पधारनेकी प्रार्थना की। दोनों ही भगवान्‌की भक्तिमें एक-से-एक बढ़कर थे। भगवान् दोनोंमेंसे किसीका भी जी नहीं तोड़ना चाहते थे। अतः उन्होंने दोनोंका ही मन रखनेके लिये एक-दूसरेको न जनाते हुए एक ही समय दो रूप धारण करके एक साथ दोनोंके घर जाकर दोनोंको कृतार्थ किया।* एक और भी प्रसंग श्रीमद्भागवतमें आता है। एक बारकी बात है, देवर्षि नारदजी यह देखनेके लिये कि भगवान् गृहस्थाश्रममें किस प्रकार रहते हैं, द्वारकामें पहुँचे। वे अलग-अलग सब रानियोंके महलोंमें गये और सभी जगह उन्होंने श्रीकृष्णको गृहस्थधर्मका यथायोग्य पालन करते हुए पाया। वे प्रातःकाल उठनेके

---

* भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया।
उभयोराविशद् गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः॥
(श्रीमद्भा० १०। ८६। २६)

समयसे लेकर रात्रिको सोनेके समयतकका समस्त दैनिक कृत्य अनेक रूपोंमें सब जगह विधिवत् करते थे। नारदजी यह सब देखकर दंग रह गये और भगवान्‌को प्रणाम करके उनकी स्तुति करते हुए (ब्रह्मलोकको) चले गये (देखिये भागवत १०। ६९। १३—४३)।

ब्रह्माजीके मोहके प्रसंगमें भी भगवान्‌के बछड़ों और गोपबालकोंका रूप धारण करने और सालभरतक इस प्रकार अनेक रूप होकर रहनेकी बात श्रीमद्भागवतमें आयी है (देखिये भागवत १०। १३)।

भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें भी यह वर्णन आता है कि जब भगवान् लंका-विजय कर चौदह वर्षकी अवधि शेष होनेपर अयोध्या लौटे, उस समय उन्होंने पुरवासियोंको मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर देखकर असंख्य रूप धारण कर लिये और पलभरमें एक साथ सबसे मिल लिये।

प्रेमातुर सब लोग निहारी।
कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना।
उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

(रामचरितमानस उत्तर० ५। २—४)

भगवान्‌के लिये यह कोई बड़ी बात भी नहीं कही जा सकती। जिन्होंने इस सारे विश्वको अपने संकल्पके आधारपर टिका रखा है और जो एक होते हुए भी लीलासे अनेक बने हुए हैं, वे यदि इस प्रकार एक ही समयमें एकसे अधिक रूप धारण कर लें तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यह कार्य तो एक योगी भी कर सकता है। फिर भगवान् तो योगेश्वरोंके भी ईश्वर तथा मायाके अधिपति ठहरे, उनके लिये ऐसा करना कौन कठिन काम है!

अब प्रश्न यह होता है कि 'क्या भगवान्‌का अवतार हमलोगोंके जन्मकी भाँति कर्मोंसे प्रेरित होता है? क्या उनका शरीर भी हमलोगोंकी भाँति पंचभूतोंसे बना हुआ मायिक होता है?' इसका उत्तर यह है कि भगवान्‌के अवतारमें इनमेंसे एक भी बात नहीं होती। भगवान्‌का अवतार न तो कर्मसे प्रेरित होकर होता है, न उनका शरीर पांचभौतिक अथवा मायिक होता है। उनका जन्म और उनके कर्म दोनों ही दिव्य—अलौकिक होते हैं। उनका अवतार कर्मसे प्रेरित तो इसलिये नहीं होता कि वे काल और कर्मसे सर्वथा परे हैं। कर्मकी स्थिति तो मायाके अंदर है और वे मायासे सर्वथा अतीत हैं। अतः कर्म उनका स्पर्श भी नहीं कर सकते। वे स्वयं गीतामें कहते हैं—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

(४।१४)

‘कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते—इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता।’ जब उन्हें तत्त्वसे जाननेवाला भी कर्मोंसे नहीं बँधता, तब उनके कर्मोंके वश होकर जन्म लेनेकी तो बात भी नहीं उठ सकती। वे तो अपनी इच्छासे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये शरीर धारण करते हैं। यह बात जेलके दृष्टान्तसे भलीभाँति समझमें आ सकती है। जेलके अंदर कैदी भी रहते हैं, जेलके कर्मचारी भी रहते हैं और जेलके अफसर—जेलर भी रहते हैं तथा कभी-कभी जेलके मालिक स्वयं राजा भी जेलके अहातेके अंदर जेलका निरीक्षण करने एवं कैदियोंपर अनुग्रह करनेके लिये तथा उन्हें जेलसे मुक्त करनेके लिये चले जाया करते हैं, परन्तु उनके जानेमें और कैदियोंके जानेमें बड़ा अन्तर है। कैदी जाता है वहाँ राजाज्ञाके अनुसार सजा भोगनेके

लिये। नियत अवधितक उसे बाध्य होकर वहाँ रहना पड़ता है, अपनी इच्छासे वह वहाँ नहीं रहता। परन्तु राजा वहाँ अपनी स्वतन्त्र इच्छासे जाता है, सजा भोगनेके लिये नहीं; और जबतक उसकी इच्छा होती है तबतक वहाँ रहता है। इसी प्रकार भगवान् भी प्रकृतिको वशमें करके अपनी स्वतन्त्र इच्छासे जन्म लेते हैं और लीला-कार्य समाप्त हो जानेपर पुनः बेरोक-टोक अपने धामको वापस चले जाते हैं।

भगवान्‌का अवतारविग्रह भी हमलोगोंके शरीरकी भाँति पंचभूतोंसे बना हुआ मायिक नहीं होता, अपितु चिन्मय—सच्चिदानन्दमय होता है; इसलिये वह अनामय और दिव्य है। इस विषयमें दूसरी बात ध्यान देनेयोग्य यह है कि भगवान्‌का जन्म साधारण मनुष्योंकी तरह नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण जब कारागारमें वसुदेव-देवकीके सामने प्रकट हुए, उस समयका

श्रीमद्भागवतका प्रसंग देखने और विचारनेसे मनुष्य समझ सकता है कि उनका जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं हुआ। अव्यक्त सच्चिदा-नन्दघन परमात्मा अपनी लीलासे ही शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसहित विष्णुके रूपमें वहाँ प्रकट हुए। उनका प्रकट होना और पुनः अन्तर्धान होना उनकी स्वतन्त्र लीला है, वह हमलोगोंके उत्पत्ति-विनाशकी तरह नहीं है। भगवान्‌की तो बात ही निराली है, एक योगी भी अपने योगबलसे अन्तर्धान हो जाता है और पुनः उसी रूपमें प्रकट हो जाता है; परन्तु उसकी अन्तर्धानकी अवस्थामें कोई उसे मरा नहीं समझता। जब महर्षि पतंजलि आदि योगके ज्ञाता एक योगीकी ऐसी शक्ति बतलाते हैं*

---

* महर्षि पतंजलि कहते हैं—

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम्।

(योग० ३। २१)

तब परमात्मा ईश्वरके लिये अन्तर्धान हो जाना और पुनः प्रकट होना कौन बड़ी बात है।

अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण साधारण लोगोंकी दृष्टिमें जन्म लेनेके सदृश ही था; परन्तु वास्तवमें वह जन्म नहीं था, वह तो उनका प्रकट होना ही था। इसीलिये तो उन्होंने माता देवकीकी प्रार्थनापर अपने चतुर्भुजरूपको अदृश्य करके द्विभुज बालकका रूप धारण कर लिया।*

गीताके ग्यारहवें अध्यायमें भी वर्णन आता है कि भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रार्थना

---

* इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया।
पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः॥
(श्रीमद्भा० १०। ३। ४६)

'यह कहकर भगवान् हरि चुप हो गये और माता-पिताके देखते-देखते अपनी मायासे तुरंत ही एक साधारण बालक बन गये।'

करनेपर पहले उसे अपना विश्वरूप दिखाया, फिर उसीकी प्रार्थनापर चतुर्भुजरूप धारण किया और अन्तमें पुनः द्विभुज मनुष्यरूप हो गये।

भगवान् श्रीरामके भी इसी प्रकार चतुर्भुज-रूपमें माता कौसल्याके सामने प्रकट होने और फिर उनकी प्रार्थनापर द्विभुज बालकके रूपमें बदल जानेकी बात मानसमें आती है। इससे प्रकट होता है कि भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार उन्हें दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाते हैं।

मनुष्योंके शरीरके विनाशकी तरह भगवान्के दिव्य वपुका विनाश भी नहीं समझना चाहिये। जिस शरीरका विनाश होता है, वह तो यहीं पड़ा रहता है; किन्तु देवकीके सामने चतुर्भुजरूपके और अर्जुनके सामने विश्वरूप तथा चतुर्भुजरूपके अदृश्य हो जानेपर उन वपुओंकी वहाँ उपलब्धि नहीं होती। इतना ही नहीं, भगवान् श्रीकृष्णने जिस देहसे यहाँ लोकहितके लिये विविध

लीलाएँ की थीं, वह देह भी अन्तमें नहीं मिला। वे उसी लीलामय दिव्यवपुसे परमधामको पधार गये। इसके बाद भी जब-जब भक्तोंने इच्छा की तब-तब ही उसी श्यामसुन्दर-विग्रहसे पुनः प्रकट होकर उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया और करते हैं। यदि उनके देहका विनाश हो गया होता तो (परमधाम पधारनेके अनन्तर) इस प्रकार पुनः प्रकट होना कैसे सम्भव होता?

इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान्‌का परम-धामप्रयाण अन्तर्धान होना है, न कि मनुष्यदेहोंकी भाँति विनाश होना। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमंगलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्॥

(११। ३१। ६)

'धारणा और ध्यानके लिये अति मंगलरूप अपनी लोकाभिरामा मोहिनी मूर्तिको योग-धारणाजनित अग्निके द्वारा भस्म किये बिना

ही भगवान्‌ने अपने धाममें प्रवेश किया।'

श्रीरामके सम्बन्धमें भी वाल्मीकीय रामायणमें वर्णन आता है कि भगवान्‌के परमधाम-गमनके समय सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजी भगवान्‌को लेनेके लिये देवताओंके साथ सरयूके तटपर आये और भगवान्‌से अपने वैष्णवदेहमें प्रवेश करनेकी प्रार्थना की और भगवान्‌ने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर तीनों भाइयोंसहित अपने इसी शरीरसे विष्णु-शरीरमें प्रवेश किया।*

---

* अथ तस्मिन् मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः॥
ततः पितामहो वाणीं त्वन्तरिक्षादभाषत।
आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव॥
भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम्।
पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः।
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः॥
(वा० उत्तरकाण्ड० ११०। ३,८,९,१२)

भगवान्‌का शरीर मायिक नहीं होता—इसका एक प्रमाण यह भी है कि मायाके बन्धनसे सर्वथा मुक्त आत्माराम मुनिगण भी उनके त्रिभुवनमोहन रूपको देखकर मुग्ध हो जाते हैं, शरीरकी सुध-बुध भूल जाते हैं। यदि वह शरीर मायासे रचित त्रिगुणमय होता तो गुणोंसे सर्वथा ऊपर उठे हुए आत्माराम, आप्तकाम मुनियोंकी ऐसी दशा कैसे हो सकती थी?

जिस समय शरशय्यापर पड़े हुए भीष्म-पितामह मृत्युके समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं उस समय भगवान् श्रीकृष्णको अपने सम्मुख आया हुआ जान वे सबसे पहले उनके त्रिभुवन-कमनीय रूपका ही ध्यान करते हैं और उसीमें प्रीति होनेकी प्रार्थना करते हैं।*

---

* त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥
(श्रीमद्भा० १।९।३३)

यदि वह रूप मायिक होता तो भीष्म-जैसे ज्ञानी महात्मा, जिन्होंने सब ओरसे अपनी चित्तवृत्तियोंको हटा लिया था और जिनका सारा जीवन परम वैराग्यमय था, मृत्युके समय उसमें अपने मनको क्यों लगाते?

श्रीराम-लक्ष्मण जब महर्षि विश्वामित्रके साथ धनुषयज्ञ देखने जनकपुर जाते हैं तो जनक-जैसे महान् ज्ञानीकी उस अनुपम जोड़ीको देखकर जो दशा होती है, उसका चित्र गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी लेखनीद्वारा बड़ी मार्मिकतासे चित्रित किया है। उस प्रसंगको उन्हींके शब्दोंमें हम नीचे उद्धृत करते हैं—

'जो त्रिभुवनसुन्दर और तमालवृक्षके सदृश श्यामवर्ण हैं, सूर्यरश्मियोंके समान पीताम्बर धारण किये हुए हैं तथा जिनका मुखकमल अलकावलीसे आवृत है—ऐसे सुन्दर रूपको धारण करनेवाले अर्जुनसखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्काम प्रीति हो।'

मूरति मधुर मनोहर देखी।
भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥
प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा।
थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू।
पुलक गात उर अधिक उछाहू॥

(रामचरितमानस बालकाण्ड)

'रामजीकी मधुर-मनोहर मूर्तिको देखकर विदेह (जनक) विशेषरूपसे विदेह (देहकी सुध-बुधसे रहित) हो गये। मनको प्रेममें मग्न जान राजाने विवेकके द्वारा धीरज धारण किया और मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर गद्गद (प्रेमभरी) गम्भीर वाणीसे कहा—'हे नाथ!

मेरा मन, जो स्वभावसे ही वैराग्यरूप बना हुआ है, इन बालकोंको देखकर इस तरह मुग्ध हो रहा है, जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर। इनको देखते ही अत्यन्त प्रेमके वश होकर मेरे मनने जबर्दस्ती ब्रह्मानन्दको त्याग दिया है।' राजा बार-बार प्रभुको देखते हैं, दृष्टि वहाँसे हटना ही नहीं चाहती। प्रेमसे शरीर पुलकित हो रहा है और हृदयमें बड़ा उत्साह है।

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अवतार-शरीर मायिक नहीं होता, अवतारोंके जन्म-कर्म अलौकिक होते हैं, '**जन्म कर्म च मे दिव्यम्**' (गीता ४। ९) और वे भक्तोंके प्रेमवश उनपर कृपा करनेके लिये स्वेच्छासे प्रकट होते हैं, कर्मोंके वश होकर नहीं। अब हमें यह देखना है कि अवतारोंकी सत्ता किन-किन शास्त्रोंसे प्रमाणित होती है। श्रीमद्भागवत, गीता, वाल्मीकिरामायण तथा

तुलसीकृत रामायणके प्रमाण तो ऊपर उद्धृत किये ही हैं; अब हम उपनिषद् तथा महाभारत आदि ग्रन्थोंके आधारपर भी भगवान्‌का प्रादुर्भाव होना प्रमाणित करते हैं।

केनोपनिषद्‌में एक बड़ी सुन्दर कथा आती है। एक बारकी बात है परब्रह्म परमात्माने देवताओंको असुरोंके साथ संग्राममें जिता दिया। देवताओंको इस विजयपर बड़ा भारी गर्व हो गया। उन्होंने सोचा कि यह विजय हमीने अपने पुरुषार्थसे प्राप्त की है। यही हालत सब जीवोंकी है। वास्तवमें करते-कराते सब कुछ भगवान् हैं, परन्तु जीव अभिमानवश अपनेको कर्ता मान लेता है और फँस जाता है। भगवान् तो सर्वज्ञ ठहरे और ठहरे दर्पहारी। देवताओंके अभिप्रायको जान गये और उनके अभिमानको दूर करनेके लिये एक अद्भुत यक्षके रूपमें उनके सामने प्रकट हुए। देवतालोग मायासे

मोहित हुए समझ नहीं सके कि यह यक्ष कौन है। भगवान् यदि अपनेको छिपाना चाहें तो किसकी शक्ति है जो उन्हें पहचान सके। वे स्वयं ही जब कृपा करके जिसको अपनी पहचान कराते हैं वही उन्हें पहचान पाता है, दूसरा नहीं—'***सो जानइ जेहि देहु जनाई।***' उस महामायावीने अपनेको ऐसे कौशलसे इस मायारूपी पर्देके भीतर छिपा रखा है कि उसे सहसा कोई पहचान ही नहीं सकता। भगवान्ने स्वयं गीतामें कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।

(७।२५)

'अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ।' इन्द्रने यक्षका पता लगानेके लिये क्रमशः अग्नि, वायुको उनके पास भेजा। यह बतलानेके लिये कि सारे देवता उन्हींकी शक्तिसे काम करते हैं, देवताओंके

पास जो कुछ भी शक्ति है वह उन्हींकी दी हुई है और उनकी शक्तिके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, ब्रह्मने एक तिनका अग्निदेवताके सामने रखा और कहा कि 'इसको जलाओ तो।' अग्निदेवता, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको जला डालनेका अभिमान रखते थे—अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी उस छोटे-से तिनकेको नहीं जला सके और लज्जित होकर वापस चले आये। इसके बाद वायुदेवताकी बारी आयी। उन्हें अभिमान था कि मैं पृथ्वीभरके पदार्थोंको उड़ा ले जा सकता हूँ, परन्तु वे भी एक तिनकेको नहीं हटा सके। हटा सकते भी कैसे? उनकी सारी शक्ति तो ब्रह्मने छीन ली थी, जो उस शक्तिका उद्गमस्थान है। फिर उनके अंदर रह ही क्या गया था, जिसके बलपर वे कोई कार्य करते। भगवान्‌के भक्तोंके सामने भी अग्नि आदि देवताओंकी

शक्ति कुण्ठित हो जाती है। एक बार भक्त प्रह्लादके सामने भी अग्निका कोई बस नहीं चला था, वह उस भक्तके प्रभावसे जलकी तरह शीतल हो गया—'**पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना।**' भक्त सुधन्वाके लिये उबलता हुआ तेल ठंडा हो गया था। अस्तु।

अबकी बार देवराज इन्द्र स्वयं यक्षके पास पहुँचे। उन्हें देखते ही यक्ष अन्तर्धान हो गये। इतनेहीमें हैमवती उमादेवी (पार्वती) वहाँ प्रकट हुईं और उन्होंने इन्द्रको बतलाया कि जो यक्ष अभी-अभी तुम्हारे नेत्रोंसे ओझल हो गया, वह ब्रह्म ही था। अब तो इन्द्रकी आँखें खुलीं और वे समझ गये कि हमलोगोंका अभिमान चूर्ण करनेके लिये ही ब्रह्मने यह लीला की थी (केन० खं ३)। इस प्रकार ब्रह्मके साकाररूपमें प्रकट होनेकी बात उपनिषदोंमें भी आती है; केवल पुराणादि ग्रन्थोंमें ही भगवान्‌के साकार

विग्रहकी बात आयी हो इतनी ही बात नहीं है। गीताके अतिरिक्त महाभारतमें और भी अवतारवादके पोषक कई प्रसंग हैं। उनमेंसे एकाध ही प्रसंगका उल्लेख हम यहाँ करते हैं। महाभारत-युद्धकी समाप्तिके बाद जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाको लौट रहे थे, रास्तेमें उनकी महातेजस्वी उत्तंक मुनिसे भेंट हुई। बातों-ही-बातोंमें जब मुनिको मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण कौरवों और पाण्डवोंके बीच सन्धि नहीं करा सके और दोनोंमें घमासान युद्ध हुआ जिसमें सारे कौरव मारे गये, तो उन्हें श्रीकृष्णपर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा कि 'हे कृष्ण! कौरव तुम्हारे सम्बन्धी थे, तुम चाहते तो युद्धको रोक सकते थे और इस प्रकार उनकी रक्षा कर सकते थे। परन्तु शक्ति रहते भी तुमने उनकी रक्षा नहीं की, इसलिये मैं तुम्हें शाप दूँगा।' मुनिके इन क्रोधभरे वचनोंको सुनकर

श्रीकृष्ण मन-ही-मन हँसे और बोले कि 'कोई भी पुरुष तप करके मेरा पराभव नहीं कर सकता। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे तपका व्यर्थ ही नाश हो। अतः तुम पहले जान लो कि 'मैं कौन हूँ, पीछे शाप देनेकी बात सोचना।' यों कहकर भगवान्‌ने मुनिके सामने अपनी महिमाका वर्णन करना प्रारम्भ किया। वे कहने लगे—'हे मुनिश्रेष्ठ! सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण मेरे आश्रय रहते हैं तथा रुद्र और वसुओंको भी तुम मुझसे ही उत्पन्न हुआ जानो। सारे भूत मुझमें हैं और मैं सब भूतोंके अंदर स्थित हूँ, इसे तुम निश्चय समझो। दैत्य, सर्प, गन्धर्व, राक्षस, नाग और अप्सराओंको भी मुझीसे उत्पन्न हुआ जानो। लोग जिसे सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त तथा क्षर-अक्षर नामसे पुकारते हैं, वह सब मेरा ही रूप है। चारों आश्रमोंके जो धर्म कहे गये हैं तथा वैदिक कर्म भी मेरा

ही रूप है। ओंकारसे आरम्भ होनेवाले वेद, हवनकी सामग्री, हवन करनेवाले होता तथा अध्वर्यु—ये सब मुझे ही जानो। उद्‌गाता सामगानके द्वारा मेरा ही स्तवन करते हैं, प्रायश्चित्तोंमें शान्तिपाठ और मंगलपाठ करनेवाले भी मेरी ही स्तुति करते हैं। धर्मकी रक्षाके लिये और धर्मकी स्थापनाके लिये मैं बहुत-सी योनियोंमें अवतार ग्रहण करता हूँ। मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही उत्पत्ति और प्रलयरूप हूँ। सम्पूर्ण भूतोंको रचनेवाला और संहार करनेवाला मैं ही हूँ। जब-जब युग पलटता है, तब-तब मैं प्रजाजनोंके हितकी कामनासे भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म धारण कर धर्मकी मर्यादा स्थापित करता हूँ। जब मैं देवयोनि ग्रहण करता हूँ, तब देवताओंका-सा बर्ताव करता हूँ; जब मैं गन्धर्व-योनिमें लीला करता हूँ, तब

गन्धर्वोंका-सा व्यवहार करता हूँ; जब मैं नाग-योनिमें होता हूँ तो नागोंकी भाँति आचरण करता हूँ और जब मैं यक्ष आदि योनियोंमें स्थित होता हूँ, तब मैं उन-उन योनियोंका-सा बर्ताव करता हूँ। इस समय मैं मनुष्य-योनिमें हूँ और मनुष्योंका-सा आचरण करता हूँ। इसीलिये मैंने कौरवोंके पास जाकर उनसे सन्धिके लिये बड़ी अनुनय-विनय की; परन्तु मोहसे अंधे हुए उन्होंने मेरी एक भी बात नहीं मानी। मैंने भय दिखाकर भी उन्हें मार्गपर लानेकी चेष्टा की; परन्तु अधर्मसे अभिभूत हुए और काल-चक्रमें फँसे हुए वे माने नहीं और अन्तमें युद्ध करके मारे गये।' भगवान्‌के इन वचनोंको सुनकर मुनिकी आँखें खुल गयीं। फिर मुनिकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपना विराट् रूप दिखलाया—वैसा ही जैसा

अर्जुनको दिखलाया था (देखिये महाभारत, अश्वमेधपर्व अ० ५३—५५)।

ऊपरके प्रसंगसे अवतारवादकी भलीभाँति पुष्टि होती है। केवल मनुष्य-योनिमें ही नहीं, अन्यान्य योनियोंमें भी भगवान् अवतार लेते हैं—यह बात भी इससे प्रमाणित हो जाती है; क्योंकि सभी योनियाँ उन्हींकी तो हैं। सभी रूपोंमें वे ही लीला कर रहे हैं। भगवान्‌के मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामनादि अवतार इसी प्रकारके अवतार थे, जिनका पुराणोंमें विस्तृत वर्णन पाया जाता है, जिनकी चर्चा करनेसे लेखका आकार बहुत बढ़ जायगा। इसीलिये यहाँ केवल भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण—इन दो प्रधान अवतारोंकी बात ही मुख्यतासे कही गयी है।

इनके अतिरिक्त भगवान्‌का एक अवतार

और होता है। इसे अर्चावतार कहते हैं। पूजाके लिये भगवान्‌की धातु, पाषाण एवं मृत्तिका आदिसे जो प्रतिमाएँ बनायी जाती हैं, वे भगवान्‌के अर्चा-विग्रह कहलाती हैं। कभी-कभी उपासकके प्रेमबल और दृढ़ निष्ठासे ये मूर्तियाँ चेतन हो जाती हैं, चलने-फिरने लग जाती हैं, हँसने-बोलने लग जाती हैं। इन अर्चा-विग्रहोंमें भगवान्‌की शक्तिके उतर आनेको अर्चावतार कहते हैं। ऐसे अनेक भक्तोंके चरित्रोंका उल्लेख मिलता है, जिनकी इष्ट मूर्तियाँ उनके साथ चेतनवत् व्यवहार करती थीं। इनमेंसे किसी भी अवतारका आश्रय लेकर भगवान्‌की भक्ति करनेसे उनकी कृपासे उनके चरणोंमें सहजहीमें दृढ़ अनुराग होकर मनुष्य सदाके लिये कृतकृत्य हो जाता है; यही मनुष्य-जीवनका परम ध्येय है।

अवतारके सिद्धान्तको भिन्न-भिन्न द्वैत-सम्प्रदायोंके आचार्योंने तो माना ही है (उनमेंसे कई तो भगवान् श्रीरामके और कई भगवान् श्रीकृष्णके अवतार-विग्रहोंको ही अपना उपास्य एवं सर्वोपरि अवतारी मानते हैं)। अद्वैत-सम्प्रदायाचार्य स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने भी अपने श्रीमद्भगवद्गीताभाष्यके उपोद्घातमें भगवान् श्रीकृष्णको आदिपुरुष भगवान् नारायणका अवतार माना है। वे कहते हैं—

दीर्घेण कालेन अनुष्ठातॄणां कामोद्भवाद् हीयमानविवेकविज्ञानहेतुकेन अधर्मेण अभिभूयमाने धर्मे प्रवर्धमाने च अधर्मे, जगतः स्थितिं परिपिपालयिषुः स आदिकर्ता नारायणाख्यो विष्णुः—भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य रक्षणार्थं देवक्यां वसुदेवाद् अंशेन कृष्णः किल सम्बभूव। ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्याद् वैदिको

धर्मस्तदधीनत्वाद् वर्णाश्रमभेदानाम्। स च भगवान् ज्ञानैश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजोभिः सदा सम्पन्नस्त्रिगुणात्मिकां वैष्णवीं स्वां मायां मूलप्रकृतिं वशीकृत्य अजोऽव्ययो भूतानामीश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोऽपि सन् स्वमायया देहवान् इव जात इव च लोकानुग्रहं कुर्वन्निव लक्ष्यते।

'बहुत कालसे धर्मानुष्ठान करनेवालोंके अन्त:करणमें कामनाओंका विकास होनेसे विवेक-विज्ञानका ह्रास हो जाना ही जिसकी उत्पत्तिका कारण है, ऐसे अधर्मसे जब धर्म दबता जाने लगा और अधर्मकी वृद्धि होने लगी तब जगत्‌की स्थिति सुरक्षित रखनेकी इच्छावाले वे आदिकर्ता नारायण-नामक श्रीविष्णुभगवान् भूलोकके ब्रह्मकी अर्थात् ब्राह्मणत्वकी रक्षा करनेके लिये श्रीवसुदेवजीसे श्रीदेवकीजीके गर्भमें अपने अंशसे श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए।

ब्राह्मणत्वकी रक्षासे ही वैदिक धर्म सुरक्षित होगा; क्योंकि वर्णाश्रमोंके भेद उसीके अधीन हैं।

ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि गुणोंसे सदा सम्पन्न वे भगवान् यद्यपि अज, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर और नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव हैं; तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूलप्रकृति वैष्णवी मायाको वशमें करके अपनी लीलासे शरीरधारीकी तरह उत्पन्न हुए-से और लोगोंपर अनुग्रह करते हुए-से दीखते हैं।' इस प्रकार अनेक युक्तियोंसे स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने श्रीकृष्णकी भगवत्ता और वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्मके साथ एकता दिखलायी है। अब हम उन्हीं परम दयालु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको बारम्बार प्रणाम करते हुए अन्तिम बात कहकर अपने लेखको समाप्त करते हैं।

जो लोग अपने पुरुषार्थसे भगवान्‌को पानेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ अनुभव करते हैं, जो निरन्तर केवल उन्हींकी कृपाकी बाट जोहते रहते हैं तथा मातृपरायण शिशुकी भाँति उन्हींपर सर्वथा निर्भर हो जाते हैं, उनसे मिलनेके लिये भगवान् स्वयं आतुर हो उठते हैं और उसी प्रकार दौड़ पड़ते हैं जैसे नयी ब्यायी हुई गौ अपने बछड़ेसे मिलनेके लिये दौड़ पड़ती है। अतएव हमलोगोंको भी परम दयालु भगवान्‌के दयापात्र बननेके लिये उनके शरण होकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक तत्परताके साथ नित्य-निरन्तर उनका भजन-ध्यान और उनकी आज्ञाके अनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।